भारोपीय परिवार एवं भारोपीय परिवार की शाखाएँ

भारोपीय भाषा परिवार विश्व का महत्त्वपूर्ण परिवार है भाषा परिवारों की अपेक्षा इसका अध्ययन, अन्वेषण भी अधिक हुआ है। इस परिवार की भाषायें भारत, ईरान, आर्मीनिया, समस्त यूरोप, अमरीका, दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि में बोली जाती हैं।इस भाषा परिवार के नामकरण के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। इसे पहले 'इन्डो-जर्मनिक' भी कहा गया था। कुछ लोग इसे 'इन्डो केल्टिक' के नाम से भी पुकारते रहते हैं। तत्पश्चात् कुछ लोगों ने इसे आर्य परिवार भी कहा है संस्कृत भाषा की प्रधानता होने के कारण इसे सांस्कृतिक परिवार भी कहा गया है परन्तु आजकल 'भारोपीय परिवार (भारत - यूरोपीय , Indo-European) नाम प्रचलित हो पड़ा है । इस परिवार की दस शाखाएँ हैं-

1.भारत ईरानी - भारोपीय भाषा परिवार यूरोशिया खण्ड का सबसे प्रमुख परिवार है। इस परिवार में मुख्यतः भारत और यूरोप की भाषाएँ शामिल हैं अतः इसका अंग्रेजी में Indo- European नाम दिया है जिसका हिंदी अनुवाद भारोपीय है।

लगभग सभी विद्वान् इस बात से सहमत है कि कोई

प्राचीन भाषा थी जिससे संस्कृत, ग्रीक, लैटिन और उनसे विकसित हुई भारतीय और यूरोपीय भाषाएँ सम्बन्धित हैं। इन सभी भाषाओं के समन्वित स्वरूप की कल्पना करके भारोपीय भाषा की कल्पना की गई है।

2. बाल्टोस्लाविक - इस उपपरिवार को दो शाखाएँ हैं

बाल्टिक (या लेट्टिक) और स्लाविक

इन शाखाओं में ये भाषाएँ हैं।

(क) बाल्टिक में -

प्रशियन- यह बहुत प्राचीन भाषा थी जो प्रशा में बोली जाती थी और सत्रह शताब्दी तक लुप्त हो गई।

लिथुआनियन - यह लिथुआनिया प्रदेश की भाषा है जो प्रथम महायुद्ध के बाद आजाद हुआ और अब इसकी गिनती रूसी में होती है।इसमें भारोपीय भाषा के प्राचीनतम रूप प्राप्त होते हैं।

लेट्टिक - यह लेवटिया राज्य भाषा है जो अब रूस का अंग

है। इसका साहित्य तेरहवीं शताब्दी में मिलता है।

(ख) स्लाविक - इस वर्ग की भाषाओं को मुख्य विशेषताएँ ये हैं-

1. ये संस्कृत के तुल्य श्लिष्ट योगात्मक हैं। शब्दरूप, धातुरूप संस्कृत के तुल्य चलते हैं।

2. भाषाओं में बलाघात का प्रयोग भी होता है। बलाघात से अर्थभेद होता है।

इस वर्ग की भाषा के तीन भेद हैं -

1. पूर्वी स्लाविक - इसमें तीन भाषाएँ आती हैं -

(क) महारूसी - इसको 'रूसी' भी कहते हैं। यह रूस (सोवियत संघ) की राष्ट्रभाषा और राजभाषा है। इसमें ही शिक्षा, प्रशासन आदि कार्य होते हैं।

(ख) श्वेतरूसी - श्वेत- रूसी रूस के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। साहित्यिक दृष्टि से इसका महत्व नहीं है।

(ग) लघुरूसी - इसको रूथेनी भी कहते हैं। यह रूस के दक्षिणी भाग में बोली जाती है।

2. पश्चिमी स्लाविक - इसमें भी तीन भाषाएँ आती हैं -

(क) जेक - यह जेकोस्लोवाकिया की भाषा है। यह मुख्यतया बोहेमिया में बोली जाती है, अत: इसे बोहेमियन भी कहते हैं।

(ख) पोलिश - यह पोलैंड की भाषा है जिसका प्राचीनतम साहित्य भी मिलता है। इस भाषा को नष्ट करने के अनेक प्रयास किए गए किन्तु यह मिट नहीं पाई।

(ग) स्लोवाकी - यह जेक की ही विभाषा है। इसकी कोई मुख्य विशेषता नहीं है।

3 दक्षिणी स्लाविक - इसमें मुख्य रूप से दो भाषाएं हैं

(क) बल्गेरी - यह बल्गेरिया की भाषा है। यह भाषा वियोगात्मक है तथा इसमें बहुत से शब्द तुर्की ग्रीक रूमानी और अल्बानी के हैं।

(ख)सर्बो क्रोटी - यह यूगोस्लाविया की भाषाओं का समूह है। इसका प्राचीन साहित्य १२वीं सदी से मिलता है।

3. आर्मीनी - यह आर्मीनिया की भाषा है। इसकी सीमा ईरान से मिली हुई है, अत: इसमें दो हजार से अधिक शब्द ईरानी भाषा के आ गए हैं। शिक्षा, कला, शासन कार्य आदि अधिकांश फारसी में ही होते हैं। यह श्लिष्ट योगात्मक भाषा है तथा इसकी ध्वनियाँ ईरानी से भिन्न हैं। आर्मीनी के वर्तमान समय में दो रूप हैं -
अरारट
स्तम्बूल

4. अल्बानी (इलीरी) - अल्बानी भाषा प्राचीन इलीरी का ही वर्तमान अविष्ट रूप है। इलीरी का पहले विस्तृत क्षेत्र में प्रचार था। पहले इसे अलग भाषा नहीं माना जाता था, परन्तु ध्वनि समूह और गठन के आधार पर इसे स्वतन्त्र भाषा माना गया है। इस पर ग्रीक, तुर्की और स्लाविक भाषाओं का बहुत प्रभाव पड़ा है।

5. ग्रीक (हेलेनिक) - इसमें प्राचीन काल में बहुत सी बोलियाँ थीं, जिनमें एट्टिक और डोरिक मुख्य थीं। इसमें सबसे पुराने ग्रन्थ होमर के दो महाकाव्य हैं इलियड एवं

ओडिसी

दोनों बोलियों में मुख्य अन्तर यह रहा है कि मूल भारोपीय भाषा की आ (a) ध्वनि एट्टिक में ए (e) हो गई है और डोरिक में आ (a) ही रही।

6. केल्टिक - लगभग २ हजार वर्ष पहले यह भाषा यूरोप के बहुत बड़े भूभाग में बोली जाती थी। यह पूर्व में तुर्की तक फैली हुई। थी। अब यह यूरोप के पश्चिमी भाग में ही सीमित रह गई है। फ्रांस के पश्चिमोत्तर भाग तथा ग्रेट ब्रिटेन में बोली जाती है। इसके २ मुख्य वर्ग हैं—(१) क-वर्ग, (२) प-वर्ग। कुछ भाषाओं में मूल भारोपीय प-ध्वनि 'प' रहती है और कुछ में 'क' हो जाती है।

7. जमनिक (ट्यूटानिक) जर्मन नाम के आधार पर इस शाखा को जर्मानिक कहते हैं। ''टयूटन' शब्द से जर्मन, इंग्लिश आदि सभी जातियों का बोध होता है, अत: इस शाखा को 'ट्यूटानिक' भी कहते हैं। यह भारोपीय परिवार की सबसे अधिक विस्तृत भूभाग में बोली जाने वाली भाषा है। इसकी एक शाखा अंग्रेजी विश्व में सबसे अधिक फैली हुई है। यह विश्वभाषा का रूप ले सकती है। जर्मन और डच भाषा का साहित्य भी उच्च कोटि का है।

8. इटालिक या रोमान्स - रोमान्स वर्ग की भाषाओं का विकास लैटिन से हुआ है। लेटिन मूलत: रोम और उसके समीपवर्ती जिले की भाषा थी। इसका सबसे पुराना साहित्य छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक का मिलता है। इससे निकली भाषाएं अपने स्थानों पर स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई। यह रोमन कैथोलिक संप्रदाय की आज भी धार्मिक भाषा है।

9. हिटाइट (हित्ती) - सन् 1907 में तुर्की के गोगाजकोई नामक स्थान पर हित्ती भाषा के कीलाक्षर-अभिलेखों से ही इस भाषा का पता चला है। इन्हें भारोपीय परिवार के प्राचीनतम अभिलेख माना जाता है, जिनका काल सन् 1900 ई. पू. से 1950 ई. पू. तक है। भारोपीय परिवार से हित्ती का सम्बन्ध वैसा ही है, जैसा कि संस्कृत अथवा ग्रीक का लैटिन से।

10. तोखारी - अंग्रेज़, फ्रैंच, रूसी तथा जर्मन विद्वानों ने बीसवीं सदी के आरम्भ में पूर्वीय तुर्किस्तान के तुरफ़ान प्रदेश में कुछ ऐसे ग्रन्थ तथा पत्र प्राप्त किये जो ब्राह्मी तथा खरोष्ठी में थे। जब इनका अध्ययन किया, तो यह भाषा भारोपीय परिवार की सिद्ध हुई। इसके बालेने वाले

‘तोखार’ लोग थे; अतः इस भाषा को तोखारी कहा गया।

भारोपीय परिवार की विशेषताएं -

1. रचना की दृष्टि से ये परिवार श्लिष्ट योगात्मक है। इस परिवार की मूल भाषाएँ संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि संयोगात्मक थीं, परन्तु इनसे विकसित आधुनिक भाषाएँ हिन्दी, अंग्रेजी आदि वियोगात्मक हो गई। यद्यपि रूसी, लिथुआनी आदि भाषाएँ अब भी विभक्तियुक्त हैं।

2. शब्द-रचना प्रकृति + प्रत्यय या अर्थतत्त्व + सम्बन्धतत्त्व के योग से होती थी। यह संयोग बहिर्मुखी था।

3. अभी तक सिद्ध नहीं हो सका है कि इन प्रत्ययों का स्वतन्त्र कुछ अर्थ था। प्रत्यय कभी स्वतन्त्र शब्द थे, यह निष्कर्ष नहीं निकलता है।

4. भारोपीय भाषाओं की धातुएँ प्रायः एकाक्षर थीं।

5. शब्द-निर्मापक प्रत्यय दो प्रकार के थे—

(क) कृत्, जो सीधे धातु में जोड़े जाते थे।

जैसे—भू + त = भूत।

(ख) तद्धित—ये कृत्-प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्दों में जुड़ते हैं। जैसे—भूत + इक भौतिक।

6.प्रारम्भ में उपसर्ग स्वतन्त्र शब्द थे। उनका क्रिया के साथ और क्रिया से पृथक् भी प्रयोग होता था। बाद में ये उपसर्ग अपना स्वतन्त्र अर्थ खोने के कारण वाचक न होकर विभिन्न अर्थों के सूचक हो गए।

7. वाक्य-रचना पदों से होती थी, शब्दों से नहीं। शब्दों से सुप् प्रत्यय लगाकर तथा धातुओं से तिङ् प्रत्यय लगाकर पद बनते थे। पदों का ही वाक्य में प्रयोग होता था।

8. समास की प्रवृत्ति—पदों को समस्त कर बृहत् पद बनाने की प्रवृत्ति मूल भारोपीय भाषा में थी। वह भारोपीय परिवार में भी रही। समस्त पदों में बीच की विभक्तियों का लोप हो जाता था। समस्त पद लुप्त विभक्ति का भी अर्थ बताते थे। समस्त पदों का स्वतन्त्र अर्थ होता था।

9. अपश्रुति - मूल भारोपीय भाषा में उदात्त स्वर के कारण

स्वरभेद (गुण, वृद्धि, दीर्घ) होता था। भारोपीय भाषाओं में मूल प्रत्ययों का लोप हो गया और स्वर- परिवर्तन से ही अर्थ-परिवर्तन का काम लिया जाने लगा। जैसे - देव > दैव, विधि > वैध, कुमार > कौमार।

10. प्रत्ययों का आधिक्य—भारोपीय भाषा में प्रत्ययों की अधिकता है मूल भाषा से पृथक् होकर अनेक भाषाएँ विकसित हुईं। अनेक मूल प्रत्यय इस संक्रमण में नष्ट हो गए। उनके स्थान पर नये-नये सम्बन्धों को बताने के लिए नये प्रत्यय गए। अतः प्रत्ययों की संख्या बहुत अधिक हो गई।
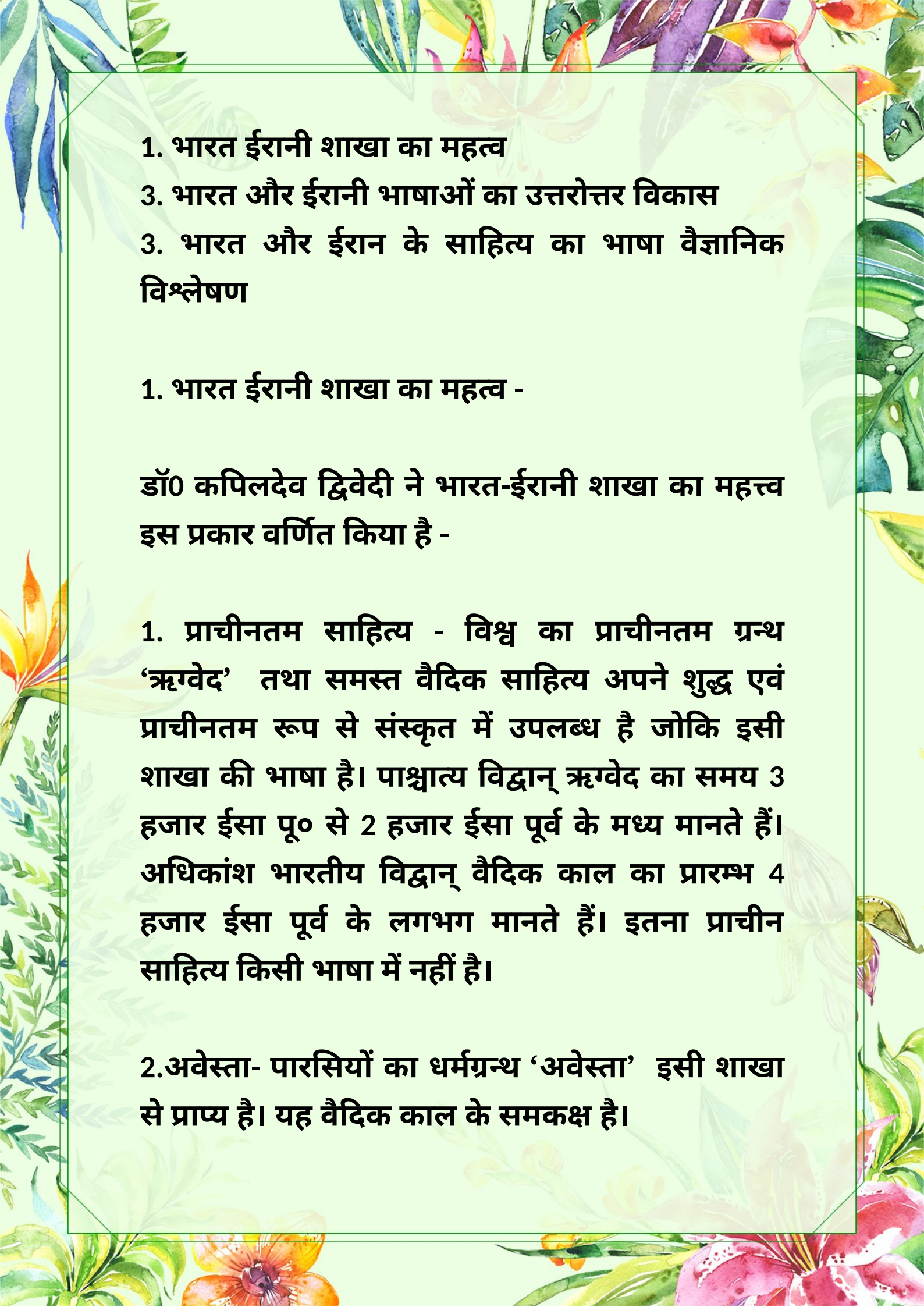
भारत ईरानी शाखा -

भूमिका - आज से लगभग दो सौ वर्षों से पूर्व पाश्चात्य देशों में भाषाओं की हर इकाई का अध्ययन प्रारंभ हुआ जिसने भाषाओं को अर्थत्व और सम्बन्धत्व के आधार पर वर्गों में विभाजित करने का काम किया और भाषाओं भी परिवारों में बांटकर रखा जाने लगा और इस तरह से विश्व की सम्पूर्ण भाषाएं 18 भाषा परिवारों में विभक्त हुईं जिनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा परिवार था भारोपीय भाषा परिवार। विश्व की सर्वाधिक भाषाएं इसी परिवार के अंतर्गत होने के कारण इस परिवार को पुनः दस शाखाओं में बांटा गया जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण और विशाल शाखा थी आर्य (भारत) ईरानी शाखा अथवा हिन्द ईरानी शाखा।
इस शाखा की भाषाओं (संस्कृत) को बोलने वाले आर्य थे तथा आज जो ईरान के नाम से जाना जाता है वह भी कभी आर्याणाम् के नाम से पुकारा जाता है अतः जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस शाखा में भारत और ईरान के साहित्यिक सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है जिसका हम निम्न बिंदुओं के द्वारा क्रमवार अवलोकन कर सकते हैं :
-

1. भारत ईरानी शाखा का महत्व
3. भारत और ईरानी भाषाओं का उत्तरोत्तर विकास
3. भारत और ईरान के साहित्य का भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण

1. भारत ईरानी शाखा का महत्व -

डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी ने भारत-ईरानी शाखा का महत्त्व इस प्रकार वर्णित किया है -

1. प्राचीनतम साहित्य - विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' तथा समस्त वैदिक साहित्य अपने शुद्ध एवं प्राचीनतम रूप से संस्कृत में उपलब्ध है जोकि इसी शाखा की भाषा है। पाश्चात्य विद्वान् ऋग्वेद का समय 3 हजार ईसा पू० से 2 हजार ईसा पूर्व के मध्य मानते हैं। अधिकांश भारतीय विद्वान् वैदिक काल का प्रारम्भ 4 हजार ईसा पूर्व के लगभग मानते हैं। इतना प्राचीन साहित्य किसी भाषा में नहीं है।

2.अवेस्ता- पारसियों का धर्मग्रन्थ 'अवेस्ता' इसी शाखा से प्राप्य है। यह वैदिक काल के समकक्ष है।

3. भाषा-विज्ञान का जन्मदाता- यूरोप में संस्कृत और अवेस्ता के तुलनात्मक अध्ययन ने ही 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' को जन्म दिया है। संस्कृत भाषाशास्त्र की जननी है।

4.प्राचीन वर्णमाला एवं ध्वनियाँ- मूल भारोपीय भाषा की प्राचीन ध्वनियों के निर्धारण में संस्कृत और अवेस्ता का असाधारण योगदान हैं।

5.प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता - विश्व की प्राचीनतम संस्कृति और सभ्यता का सर्वांगीण इतिहास संस्कृत और अवेस्ता भाषा के साहित्य से ही प्राप्त होता है।

6.भाषाशास्त्रीय देन- भाषाशास्त्र के सभी अंग अर्थात ध्वनिविज्ञान (शिक्षा), पद-विज्ञान (व्याकरण) और अर्थविज्ञान (निरुक्त) का मौलिक आधार संस्कृत से ही प्राप्त होता है।

2. भारत और ईरानी भाषाओं का उत्तरोत्तर विकास -

भारतवर्ष की प्राचीनतम भाषा संस्कृत है तथा ईरान की अवेस्ता। कालक्रम के प्रवाह में दोनों ही भाषाओं में

अनेक परिवर्तन हुए जिससे इनका रूप उत्तरोत्तर विकसित होता चला गया। कहीं भाषा में नवीनता आई तो कहीं भाषा का स्वरूप पूरी तरह से बदल गया जिसे हम बिंदुओं द्वारा अच्छे से समझ सकते हैं -

1. भारतीय आर्यभाषा संस्कृत -

संस्कृत जिसे देववाणी भी कहा जाता है , विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है और वह कभी आर्यों की जनभाषा हुआ करती थी। संस्कृत साहित्य का अवलोकन करने के पश्चात हमें उसके दो भेद प्राप्त होते हैं -

1.वैदिक संस्कृत
2.लौकिक संस्कृत

वैदिक संस्कृत - वैदिक संस्कृत का सबसे पहले दर्शन हमें छंदोबद्ध शैली में ऋग्वेद में मिलता है तत्पश्चात यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में गद्य शैली भी दृष्टिगोचर होती है जो ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषदों में भी प्राप्य है।
वैदिक संस्कृत में 13 स्वर एवं 34 व्यंजन सहित कुल मिलाकर 52 ध्वनियां प्राप्त होती हैं जिनके रूपों बदलाव

आने से अन्य भाषाएं भी अस्तित्व में आई। वैदिक संस्कृत की अपनी कुछ विशेषताएं हैं जो इसे अन्य भाषाओं से पृथक करती हैं -

1. वैदिक भाषा की पदरचना श्लिष्ट योगात्मक थी।
2. पदरचना में विविधता और अनेकरूपता थी।
3. रूपों में लेट् लकार का प्रयोग होता था।
4. कृत् प्रत्ययों में तुम् के अर्थ में से, असे, अध्यै आदि 15 प्रत्यय थे।
5. वेद में संगीतात्मक स्वर थी।
6. उपसर्ग धातु से पृथक् भी प्रयुक्त होते थे
7. ह्रस्व और दीर्घ के साथ प्लुत का भी प्रयोग प्रचलित था।
8. दो स्वरों के मध्य में ड > ळ और ढ > ळ्ह हो जाता था
9. ' लृ ' स्वर का प्रयोग प्रचलित था।
10. प्रगृह्य वाले स्थल पर भी संधि मिलती है।
11. मध्य स्वरागम या स्वरभक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

लौकिक संस्कृत - लौकिक संस्कृत को प्रायः ‘संस्कृत’ ही कहा जाता है। संस्कृत का सबसे प्राचीन एवं आदि-काव्य वाल्मीकि रामायण 500 ई0 पू0 का है। यास्क,

कात्यायन, पतंजलि आदि के लेखों से सिद्ध है कि ईसापूर्व तक संस्कृत लोक-व्यवहार की भाषा थी। वैदिक संस्कृत से पूर्ण रूप से भिन्न न होने पर इस भाषा की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो वैदिक संस्कृत में प्राप्त नहीं होती जिन्हें हम दो श्रेणियों में रख सकते हैं -

ध्वनि सम्बन्धी
भाषा सम्बन्धी

ध्वनि सम्बन्धी -

1. वैदिक संस्कृत में 52 ध्वनियाँ थीं। संस्कृत में 48 ध्वनियां रह गई हैं। संस्कृत में वैदिक संस्कृत की 4 ध्वनियाँ प्रायः लुप्त हो गई हैं। ये हैं-ळ, ळ्ह जिव्हामूलीय और उपध्मानीय।
2. जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के स्थान पर विसर्ग (:) का ही प्रयोग होता है।
3. वैदिक ह्रस्व और दीर्घ ग्वु ध्वनि संस्कृत में नहीं रही।
4.संस्कृत में लृ स्वर का प्रयोग केवल क्लृप् धातु में ही मिलता है।
5.उच्चारण की दृष्टि से ए, ओ, ऐ, औ का उच्चारण संयुक्त स्वरों के तुल्य न होकर मूल स्वर के तुल्य होने लगा।

भाषा सम्बन्धी -

1 शब्दरूपों और धातुरूपों में वैकल्पिक रूपों की न्यूनता हो गई।
2. सन्धि-नियमों की अनिवार्यता हो गई।
3. लेट् लकार का अभाव हो गया।
4. भाषा में स्वरों का प्रयोग समाप्त हो गया।
5. तुमर्थक 15 प्रत्ययों से स्थान पर केवल 'तुम्' प्रत्यय ही शेष रहा।
6.शब्दकोष में पर्याप्त अन्तर हो गया। प्राचीन ईम्, सीम् जैसे निपात लुप्त हो गए।
7.संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलात्मक स्वर का प्रयोग होने लगा।
8.उपसर्गों का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं रहा।

इस प्रकार दोनों ही भाषाएं मौलिक रूप से समान होते भी आपस में वैषम्य भी लिए हुए हैं जो इन मध्य कालांतर में हुए भेदों को बताने के लिए पर्याप्त हैं। वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत की समानताएं एवं विषमताएं इस प्रकार हैं -

समानताएं -

1.दोनों श्लिष्ट योगात्मक हैं।
2.दोनों में प्रायः सभी शब्द धातुज हैं।
3.रूढ़ शब्दों की संख्या कम है।
4.पद-निर्माण की विधि प्रायः एक ही है। सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित आदि प्रत्यय समान हैं।
5.धातुओं का गणों में विभाजन, णिच्, सन् आदि प्रत्यय समान है।
6.समास-विधि दोनों में है।
7.धातुओं और शब्दों के अर्थ प्रायः एक ही है।
8.दोनों में 3 लिंग, 3 वचन, 3 पुरुष है।
9.वाक्य-रचना शब्दों से नहीं, अपितु पदों से ही होती हैं तथा दोनों में वाक्य में पद-क्रम निश्चित नहीं है।
10.दोनों में संधि-कार्य होते हैं।
11.दोनों में कारक एवं विभक्तियां हैं।

विषमताएं -

वैदिक संस्कृत **लौकिक संस्कृत**

1.उदात्त आदि स्वरों का प्रयोग था।	यह प्रयोग नही रहा।
2. शब्द रूपों में विविधता थी	यह विविधता बहुत कम हो गई है
3. लकारों में लेट लकार था	यहां लेट लकार अनुपलब्ध है
4. लङ लुङ आदि में अट् का आगम अनिवार्य नहीं था	लङ लुङ आदि में अट् का आगम अनिवार्य है
5. तुम् कत्वा आदि अर्थों में अनेक प्रत्यय	तुम् कत्वा ल्यप आदि में थोड़े ही प्रत्यय शेष रहे हैं।
6. संधि नियम ऐच्छिक थे	यहां संधि नियम आवश्यक हो गए हैं

7. तर , तम प्रत्यय संज्ञा शब्दों से भी से भी होते थे	तर तम प्रत्यय विशेषण शब्दों होते हैं
8. ईम् , सीम, वै आदि निपात थे	यहां ये निपात नहीं रहे
9. अच्, अम्, क्षद्, जिन्व्, ध्रज् आदि धातुएँ भी थीं।	यहां ये धातुएं नहीं रहीं।
10. छंद पूर्ति के लिए स्वरभक्ति का प्रयोग होता था	स्वर भक्ति का प्रयोग नहीं होता

यहां तक भारत ईरानी शाखा के अंतर्गत आर्यभाषा संस्कृत का विवेचन पूर्ण हुआ। अब प्रकरण के अनुसार ईरानी भाषा का भी विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है -

2. ईरानी भाषा - कालक्रम की दृष्टि से ईरानी भाषाओं को तीन भागों में बांटा जाता है -

i) प्राचीन युग
ii) मध्य युग
ii) आधुनिक युग

i) प्राचीन युग - ईरान का प्राचीन साहित्य काफी समृद्ध था जिसे बार बार नष्ट करने का प्रयत्न किया गया इसलिए उसका बहुत थोड़ा साहित्य आज उपलब्ध है जोकि‘अवेस्ता’ में संगृहीत है।

प्राचीन ईरानी की दो प्रमुख भाषाएँ थीं -

1. पूर्वी ईरानीः इसको ‘अवेस्ता’ कहते हैं। यह पारसियों के धर्मग्रन्थों की भाषा है। पारसियों के धर्मग्रन्थों को भी ‘अवेस्ता’ कहते हैं और उनकी भाषा को भी।जब अवेस्ता ईरान की जनभाषा नहीं रह गई, और पहलवी का प्रचार हुआ तो अवेस्ता की टीका पहलवी में की गई जिसे ‘ज़ेन्द’ नाम दिया। ‘ज़ेन्द’ का अर्थ ‘टीका’ होता हैं अब दोनों शब्दों को मिलाकर लोग उस पुस्तक को ज़ेन्दावेस्ता कहते हैं। अवेस्ता का समय 700 ई 0 पू0 माना जाता है।

2. पश्चिमी ईरानीः इसको ‘प्राचीन फारसी’ कहते हैं। पश्चिमी ईरान को फारस कहते थे। इसमें अकीमिनियन

साम्राज्य के संस्थापक कुरुश (558-530 ई0 पू0) के अभिलेख मिलते हैं। इसके पश्चात् दारा प्रथम (522-486 ई0 पू0) के बेहिस्तून शिलालेख मिलते हें। ये अत्यन्त प्रसिद्ध एवं आज तक सुरक्षित हैं। इनसे प्राचीन फारसी के स्वरूप का ज्ञान होता है। दारा प्रथम के राज्यकाल में प्राचीन फारसी राजभाषा थी। प्राचीनता में यह अवेस्ता के कुछ बाद की है। यह अवेस्ता से काफी मिलती है।

ii) मध्य युग - : इस युग की ही समयावधि में पहलवी का विकास हुआ। प्राचीन फारसी जिसे हख्मानी फारसी भी कहते हैं। इसी का विकसित रूप मध्ययुगीन 'फारसी' या 'पहलवी' है जिसका प्राचीनतम शिलालेख अर्दशिर् (226-241 ई0) के राज्यकाल का है। पहलवी का साहित्य भी तृतीय शती ई0 से मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि पहलवी के भी संस्कृत की तरह दो रूप हैं -

1. हुज्वारेश
2. पारसी या पाज़न्द

1.हुज्वारेशः इसमें सेमिटिक शब्दावली अधिक है। इसका वाक्यविन्यास सेमिटिक से प्रभावित है और लिपि भी सेमिटिक है। यह ससानियन राजवंश (216 ई0-652 ई0)

की भाषा थी। इसमें अवेस्ता का अनुवाद हुआ है।

2.पारसी या पाज़न्दः यह पहलवी का परिष्कृत रूप था। इसकी वर्णमाला सुस्पष्ट थी। एक ध्वनि के लिए एक चिह्न रखा गया। इस नवीन वर्णमाला का प्रयोग पहलवी में प्रचलित हुआ। इसमें आर्य शब्दावली का प्रयोग विशेष रूप से हुआ और सामी शब्दों का बहिष्कार किया गया। भारत में आने वाले पारसियों की यही भाषा थी।

3. आधुनिक युगः जिस प्रकार संस्कृत से हिन्दी का विकास हुआ है, उसी प्रकार प्राचीन फारसी से आधुनिक फारसी का विकास हुआ है। आधुनिक फारसी वियोगात्मक हो गई है। यह ईरान की राष्ट्रभाषा है। इसका प्रारम्भिक ग्रन्थ महाकवि फिरदौसी (940-1020 ई0) का 'शाहनामा' है जोकि वहां का राष्ट्रीय महाकाव्य है। इस भाषा साहित्य बहुत समृद्ध है जोकि अरबी में ही है किंतु अब वहां अरबी के स्थान पर आर्य परिवार के शब्द प्रचलन में आ रहे हैं। आधुनिक फारसी में अनेक बोलियां भी शामिल हैं , यथा -

पश्तोः यह अफगानिस्तान की भाषा हैं इसे अफगानी भी कहते हैं। इस पर भारतीय ध्वनि, वाक्य-रचना और

बलाघात आदि का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है

बलूचीः यह विलोचिस्तान की भाषा है। यह आधुनिक फारसी के समीप है। व्याकरण और साहित्य की दृष्टि से बहुत पिछड़ी हुई है।

पामीरीः चित्राल और हिन्दुकुश पर्वत में पामीरी भाषा की वारवी और यिदघाह बोलियाँ प्रचलित हैं। इन बोलियों पर ईरानी का पर्याप्त प्रभाव है।

कुर्दिशः इसको कुर्दी भी कहते हैं। यह वर्तमान फारसी के निकट है। यह कुर्दिस्तान की बोली है।

3. भारत और ईरान के साहित्य का भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण

जैसा कि उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो चुका है हिन्द ईरानी शाखाएं की भाषाएं एवं साहित्य भारोपीय परिवार की अन्य शाखाओं से अत्यंत समृद्ध एवं लोकप्रिय हैं। आर्यभाषा संस्कृत का प्रथम साहित्य अर्थात वेद वैदिक

संस्कृत में उपलब्ध है तथा ईरानी साहित्य अवेस्ता पहलवी भाषा में।
किंतु अब प्रश्न यहां ये उठता है कि आखिर इन दोनों भाषाओं के मध्य ऐसा क्या है जिस कारण भाषाओं का भिन्न भिन्न होते हुए भी दोनों का अध्ययन एक ही शाखा के अंतर्गत किया तो इसका उत्तर यह है कि दोनों की भाषा शैली में बहुत अधिक साम्यता है।

'अवेस्ता' धर्मगंन्थ की भाषा, शब्दावली, रचना, छन्दोयोजना और भावावलि वैदिक मन्त्रों से बहुत अधिक मिलती है। संस्कृत और अवेस्ता के ध्वनि-नियमों को जाननेवाला कोई भी संस्कृतज्ञ वेद के मन्त्रा को अवेस्ता में और अवेस्ता की गाथाओं को वैदिक मन्त्रा के रूप में परिवर्तित कर सकता है। जैसे -

अवेस्ता	संस्कृत
Vispa drukhsh	विश्वो दुरक्षो
janaite	जिन्वति

Vispa drukhsh विश्वो दुरक्षो nashaiti नश्यति

इस प्रकार अवेस्ता तथा संस्कृत परस्पर मिलती जुलती हैं किंतु फिर भी ये दोनों भाषाएं अलग अलग ही हैं अतः यही इन दोनों भाषाओं में कहीं कहीं समानताएं पाई जाती हैं तो विषमताएं भी पाई जाती हैं अतएव यहां भाषा विज्ञान की दृष्टि से इन दोनों भाषाओं की समानताओं एवं विषमताओं दोनों पर ही प्रकाश डाला जा रहा है -

अवेस्ता एवं संस्कृत की समानताएं -

दोनों ही भाषाओं में मूल भारोपीय भाषा के मूल ह्रस्व स्वर a, e, O के स्थान पर 'अ' हो गया है

दोनों ही भाषाओं में भारोपीय उदासीन स्वर अ̆ को ई हो गया है।

अवेस्ता में संस्कृत के तुल्य ही शब्द रूप चलते हैं। अवेस्ता में भी आठ कारक , तीन वचन और तीन लिंग हैं। कारक-चिह्न तथा कारकों के प्रयोग भी प्रायः समान हैं।

अवेस्ता में भी संस्कृत के तुल्य विशेषणों के रूप विशेष्य के तुल्य चलते हैं ।

अवेस्ता में भी संस्कृत के तुल्य संख्याएँ और संख्येय शब्द मिलते-जुलते हैं ।

सर्वनाम शब्दों में भी अधिकांश में साम्य है । युष्मद्, अस्मद् के तुल्य रूप मिलते हैं। अज़म् (अहम), मा (माम्), मत् (मत्), मे (मे)।

अवेस्ता में वाच्य, काल, वक्ति (Mood), लेट् लकार का प्रयोग आदि वैदिक संस्कृत के तुल्य है।

अवेस्ता में वैदिक संस्कृत की भांति तुमन्, ल्यप् (य) वाले रूप भी हैं । इनके प्रयोग में भी समानता है । परस्मैपद और आत्मनेपद वाले तिङ् प्रत्यय भी हैं ।

अवेस्ता में भी संस्कृत के तुल्य 10 गण हैं। इसमें भी विकरण (अ, य, अय आदि) और अविकरण (शप् - लोप आदि) भेद है।

वैदिक मन्त्रों और अवेस्ता की गाथाओं की छन्दोरचना में बहुत अधिक साम्य है । अवेस्ता में गायत्री, अनुष्टुप त्रिष्टुप् आदि छन्द मिलते हैं।

संस्कृत और अवेस्ता की विषमताएँ

मात्राभेद-दोनों में स्वरमात्राओं में भेद मिलता है जैसे वैदिक संस्कृत का अथ मात्राभेद से अवेस्ता में अथा हो गया है।

संस्कृत ए को अवेस्ता में अए (ae)। वेद > Vaeda (वएदा) ।

संस्कृत ओ को अवेस्ता में अओ (ao) हो जाता है। होता > Zaota (जओता)।

अवेस्ता में स्वरों का बाहुल्य है। अवेस्ता में 8 स्वर है, जिनके स्थान पर संस्कृत में केवल अ, आ 2 स्वर मिलते हैं।

अवेस्ता में स्वर-समुदाय का प्रयोग अधिक है । संस्कृत ए, ओ, ऐ , औ के स्थान पर क्रमश: अए, अओ, आइ, आउ मिलते हैं।

अवेस्ता में ऋ के स्थान अर्, र् या अ मिलता है । कृणोति > करनओति ।

अवेस्ता में स् को ह हो जाता है। सिन्धु > हिन्दु, असुर > अहुर, आदि।

अवेस्ता में ह को ज् हो जाता है। हृदय > जरदय, हस्त > जस्त।

अवेस्ता में श्व को स्प हो जाता है। विश्व > विस्प, अश्व > अस्प।

अवेस्ता में टवर्ग सर्वथा नहीं है ।

अवेस्ता में लृ सर्वथा नहीं है इसके स्थान पर र् है।

कवर्ग आदि वर्गों के चतुर्थ वर्ण अवेस्ता में नहीं है।

अवेस्ता में अन्तिम स्वरों को दीर्घ हो जाता है । असुर > अहुरा, असि> अही।